नियमसार, २८६ कलश है न? २८६ कलश। आचार्य ने स्वयं अपने लिये बनाया है। अपने लिये बनाया है। यह सार में सार अन्त में (कहते हैं), **ज्ञान तो बराबर शुद्धजीव का स्वरूप है;...** है? ज्ञान जाननस्वरूप वह तो बराबर शुद्ध जीव का स्वरूप है। आहाहा! करना यह है। लाख बात की बात परन्तु करना तो यह है। शुद्ध जीव का स्वरूप, उसका अनुभव।

यहाँ तो आचार्य ऐसा कहते हैं कि यह मुनि है। **इसलिए (हमारा) निज आत्मा...** क्योंकि **ज्ञान तो बराबर शुद्धजीव का स्वरूप है; इसलिए....** आहाहा! ज्ञान जाननस्वभाव है भगवान चैतन्य, बराबर शुद्ध जीवस्वरूप है। इस कारण से हमारा निज आत्मा **अभी (साधकदशा में) एक (अपने) आत्मा को नियम से (निश्चय से) जानता है।** विशेष नहीं परन्तु एक आत्मा को जानता है।

आत्मा ज्ञानस्वरूप, वह जीव। वह बराबर ज्ञानस्वभावी आत्मा ही, वही आत्मा बराबर **(हमारा) निज आत्मा...** यह साधक की बात है। आहाहा! **निज आत्मा अभी (साधकदशा में) एक (अपने) आत्मा को नियम से (निश्चय से) जानता है।** आहाहा! एक आत्मा को जानता है। **और, यदि वह ज्ञान प्रगट हुई सहज दशा...** यदि उसकी सहज अवस्था प्रगट हुई तो **दशा द्वारा सीधा (प्रत्यक्षरूप से) आत्मा को न जाने...** आहाहा! असंख्य प्रदेश, अनन्त गुण, अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें... वह वर्तमान साधकदशा में तो एक आत्मा मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा अनुभव है। परन्तु जो ज्ञान की प्रगट दशा होगी, तब आत्मा पूरा असंख्य प्रदेशी और अनन्त गुण प्रत्यक्ष देखने में आयेंगे। आहाहा! समझ में आया? आड़ी-टेढ़ी बात कुछ नहीं। मुद्दे की यह है। लोगों को लगता है कि यह एक की एक बात है। परन्तु एक की एक बात... आचार्य ने स्वयं के लिये बनाया है, वह यह बनाया है। आहाहा!

यह ज्ञानस्वरूप भगवान **बराबर शुद्धजीव का स्वरूप है;...** ज्ञान। इस कारण से **(हमारा) निज आत्मा अभी (साधक दशा में) एक (अपने) आत्मा को नियम से (निश्चय से) जानता है।** असंख्य प्रदेश और उसका विस्तार और इतना सब साधक में नहीं (जानते)। आहाहा! **और, यदि वह ज्ञान प्रगट हुई सहज दशा द्वारा...** आहाहा! कहते हैं, उसकी ऋद्धि-पूर्ण समृद्धि जो ऋद्धि है, वह जो प्रगट हुई... आहाहा! तो **सीधा (प्रत्यक्षरूप से) आत्मा को न जाने...** ऐसी प्रगट दशा में सीधा आत्मा को न जाने **तो वह ज्ञान अविचल आत्मस्वरूप से अवश्य भिन्न सिद्ध होगा!** तो वह ज्ञान अविचल ऐसे आत्मस्वरूप से अवश्य भिन्न शुद्ध होगा। परन्तु ऐसा है नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं?

छद्मस्थ को वर्तमान में तो ज्ञान शुद्ध जीव का स्वरूप है, इसलिए बराबर वर्तमान में हम आत्मा का जैसा शुद्ध जीवस्वरूप ज्ञान है, वैसा जानते हैं परन्तु अन्तर की सब

शक्तियों को प्रत्यक्ष, असंख्य प्रदेश प्रत्यक्ष और अनन्त शक्ति प्रत्यक्ष (नहीं जानते)। वह तो **प्रगट हुई सहज दशा द्वारा...** प्रगट हुई सहज अवस्था... प्रगट होगी। प्रगट दशा पूर्ण होगी। आहाहा! यह करना है। इसमें व्रत और तप यह कहाँ आया? यह सब क्रिया बन्ध का कारण है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा... ऐसा यदि बराबर शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव होवे तो एक आत्मा ही ज्ञात हुआ। परन्तु यदि उस आत्मा में पूर्ण दशा हो और आत्मा को पूर्ण रीति से न जाने तो आत्मा ज्ञान नहीं। आहाहा! करना यह है।

कोई आत्मा ज्ञानस्वभाव के अतिरिक्त पर का तो कुछ करता ही नहीं। आहाहा! पूरे दिन यह करना और यह करना और यह करना... वह आत्मा कर नहीं सकता। आत्मा को पर का कर्ता मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। वह जैन नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! आत्मा अपने अतिरिक्त परपदार्थ को स्पर्श ही नहीं करता। छूता नहीं तो कर्ता कहाँ से होगा? शरीर को भी स्पर्श नहीं करता, आँख को स्पर्श नहीं करता, कर्म को स्पर्श नहीं करता। ऐसा भगवान अन्दर आत्मा ज्ञानस्वरूपी वर्तमान में तो हमने हमारे आत्मा को जाना। परन्तु उसकी उत्कृष्ट दशा जब प्रगट होगी, तब प्रत्यक्ष न जाने तो वह आत्मा नहीं है। आहाहा! है?

अवश्य भिन्न सिद्ध होगा! तो वह ज्ञान भिन्न, ज्ञान से आत्मा भिन्न सिद्ध होगा। ज्ञान प्रत्यक्ष होकर वर्तमान में हम जानते हैं और प्रत्यक्ष रीति से पूर्ण न जाने तो वह ज्ञान ही नहीं है। आहाहा! साधारण लोगों को, जिन्हें क्रियाकाण्ड का रस है, उन्हें यह बात समझना कठिन पड़ती है। क्रियाकाण्ड तो जितना किया जाए, वह सब बन्ध का कारण है। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, यात्रा सब शुभराग है और बन्धन का कारण है। कठिन पड़े, प्रभु!

यहाँ तो रागरहित शुद्ध जीवस्वरूप। ऐसा है न? शुद्ध जीवस्वरूप का अर्थ यह कि रागरहित। पहली लाईन आयी न? **बराबर शुद्धजीव का स्वरूप है;...** कौन? ज्ञान। उसमें नहीं राग, दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है ही नहीं। वह ज्ञान बराबर जीवस्वरूप है। उसे हम जानते हैं। परन्तु जब पूर्ण प्रगट होगा, तब आत्मा को अन्दर न जाने तो वह ज्ञान ही नहीं है। आहाहा! यह तो अन्दर में करने का आया। बाहर में करने का तो कुछ आया नहीं। भगवन! तेरी महिमा तेरे स्वरूप में है। प्रभु! तेरी प्रभुता तो तेरे पुरुषार्थ में है। तेरी प्रभुता कोई राग में (नहीं है)। आहाहा! रागादि शुभराग में भी पुरुषार्थ करना... आहाहा! कठिन लगे। नपुंसक कहा है—समयसार में शुभभाव को आत्मा के वीर्य से विरुद्ध नपुंसक है (ऐसा कहा है)। आहाहा! गजब बात है।

इसलिए यहाँ कहते हैं कि **ज्ञान तो बराबर शुद्धजीव का स्वरूप है;...** पर का कुछ करना-फरना यह नहीं। आहाहा! शुभभाव, जैसे नपुंसक को वीर्य नहीं है तो पुत्र नहीं होता, उसी प्रकार शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह शुभभाव नपुंसक जैसे हैं। इसमें धर्म की प्रजा उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! ऐसी बातें! ऐसी कठिन बात है। समयसार में पुण्य-पाप के अधिकार में आया है। दो जगह आया है। एक अजीव अधिकार में आया है। दो जगह नपुंसक आया। संस्कृत टीका में क्लीव (कहा है)। क्लीव अर्थात नपुंसक। गजब बात है, प्रभु!

यहाँ तो कहते हैं कि अकेले ज्ञानस्वरूप का अनुभव, वह आत्मा का ज्ञान है। इसके अतिरिक्त शुभ-अशुभभाव, वह वीर्य नहीं है। पीछे शक्तियाँ हैं न? सैंतालीस शक्तियाँ हैं न, समयसार में? उसमें ऐसा लिया है कि वीर्य किसे कहते हैं? वीर्य कहते किसे हैं? आत्मबल... बल... बल... बल... बल... कहते किसे हैं? कि जो आत्मा के आनन्दादि स्वरूप की रचना करे, उसे वीर्य कहते हैं। आहाहा! गजब बात है। सैंतालीस शक्ति में है। सैंतालीस शक्ति है न? आहाहा! यह तो नियमसार है। आत्मा के अन्दर ज्ञान जैसे स्वरूप है, वैसे वीर्य भी स्वरूप बल है। परन्तु जो वीर्य अपने में रहने का पुरुषार्थ न करे और वीर्य पुण्य अर्थात् शुभभाव की रचना में रुके (तो वह नपुंसक)। आहाहा! कठिन बात, भगवान! वीतराग का धर्म अलौकिक है। वीतराग के अतिरिक्त कहीं यह बात है नहीं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात और वह भी दिगम्बर धर्म के अतिरिक्त... आहाहा! ऐसी बात कहीं अन्यत्र है नहीं। आहाहा! श्वेताम्बर के करोड़ों श्लोक देखे, यह बात नहीं है। आहाहा!

आत्मा अपने वीर्य-पुरुषार्थ से अपनी ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि निर्मल पर्याय को रचे, उसे आत्मा का बल कहा जाता है। लोग कहते हैं कि मुझमें बहुत बल है। यह तो शरीर का बल होवे तो कहे, मुझमें बल है। वह मिथ्या है। शरीर में बल है, वह तो जड़ का बल है। परन्तु आत्मा का बल उसे कहते हैं, आत्मा का बल / वीर्य उसे कहते हैं कि उसकी अपनी शुद्ध पवित्र आनन्द की रचना करे। आहाहा! बात-बात में अन्तर पड़ता है, इसलिए लोगों को एकान्त जैसा लगे न! एकान्त है... ऐ... सोनगढ़ का एकान्त है। सब सुनते हैं। सब खबर है। जैसा कहे वैसा, प्रभु! तुझे इस भाव में आना पड़ेगा। इस भाव में आये बिना कहीं उसका हल आवे ऐसा नहीं है। आहाहा!

लाख करोड़ शुभभाव करे तो उससे आत्मा में एक भव भी घटे उसे, ऐसा तीन काल में नहीं है, क्योंकि आत्मा में भव नहीं है। भव नहीं है, उसके आश्रय से भव घटते हैं। जिसमें भव नहीं, उसके आश्रय से भव घटते हैं। राग को, शुभराग तो घोर संसार है। आहाहा! पाठ है। घोर संसार। राग अन्धकार (स्वरूप है)। राग अपने को नहीं जानता, राग चैतन्य को नहीं जानता, वह चैतन्य द्वारा ज्ञात होता है, इसलिए वह राग अजीव और जड़ है। आहाहा! डाह्याभाई! जड़, जड़ कहा। गजब बात है। यह सब व्यवहार चलता है इस प्रकार। बापू! भाई! आता है। शुभभाव आता है परन्तु वह आदरणीय नहीं है। हेय है। शुभभाव आता है, भक्ति, वन्दन आदि होते हैं परन्तु हेयबुद्धि से है, उपादेयबुद्धि से नहीं। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं **सीधा (प्रत्यक्षरूप से) आत्मा को (पूर्ण रीति से) न जाने तो वह...** आत्मा नहीं है। वह ज्ञान ही नहीं है। **वह ज्ञान अविचल आत्मस्वरूप से अवश्य भिन्न सिद्ध होगा!** क्योंकि ज्ञान पूर्ण प्रगट हुआ और आत्मा को न जाने तो ज्ञान और आत्मा दोनों भिन्न हो गये। क्या कहा समझ में आया? ज्ञान वर्तमान में शुद्धस्वरूप है, यह तो कहा। हमारा निज आत्मा अभी एक आत्मा को निश्चय से जानता है। हमारा ज्ञान अपने को वर्तमान में जानता है। **और, यदि वह ज्ञान प्रगट हुई सहज दशा द्वारा सीधा (प्रत्यक्षरूप से)...** आत्मा को प्रत्यक्षरूप से **न जाने तो वह ज्ञान अविचल आत्मस्वरूप से अवश्य भिन्न सिद्ध होगा!** ज्ञान ऐसा प्रगट हुआ और आत्मा को न जाने तो भिन्न हो गया। आत्मा और ज्ञान भिन्न (सिद्ध) हुए। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें! वे तो सीधे यह करो, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, भक्ति करो, पूजा करो, सम्मेदशिखर की यात्रा करो। सम्मेदशिखर की लाख यात्रा कर न! उस परद्रव्य की ओर का लक्ष्य अकेला राग है।

तीन लोक के नाथ ऐसा पुकारते हैं कि '**परदव्वादो दुग्गई**'। मैं परद्रव्य हूँ, मेरे ऊपर तेरी नजर जाएगी तो तुझे शुभराग होगा। आहाहा! कठिन काम है। बात धार लेना, वह अलग है और उसरूप होना, आत्मा-आत्मा के ज्ञानस्वरूप होना, (वह दूसरी बात है)। जो रागरूप है, उसे ज्ञानस्वरूप की, शुद्ध जीवस्वरूप ज्ञानस्वरूप होने से ज्ञान का जीवस्वरूप में एकाकार होना, वह न हो तो वह ज्ञान ही नहीं है। आहाहा! बात सादी, परन्तु बात बड़ी है। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूपी प्रभु है। शरीर, वाणी, मन तो जड़-मिट्टी-धूल है। कर्म धूल है। पुण्य और पाप वह तो जड़ अचेतन है। क्योंकि पुण्य और पाप राग है। राग में जानने की शक्ति नहीं है। आहाहा! उससे भिन्न अकेली जानने की शक्तिस्वरूप शुद्ध जीवस्वरूप मैं हूँ। उसे मैं जानता हूँ परन्तु पूर्ण शक्ति प्रगट हो और पूर्ण आत्मा न जाने तो वह ज्ञान और आत्मा एक नहीं है। तो ज्ञान और आत्मा भिन्न-भिन्न हुए। आहाहा! है न डाह्याभाई! **अवश्य भिन्न सिद्ध होगा!** आहाहा!

और इसी प्रकार (अन्यत्र गाथा द्वारा) कहा है कि:—

णाणं अव्विदिरित्तं जीवादो तेण अप्पगं मुणइ।
जदि अप्पगं ण जाणइ भिण्णं तं होदि जीवादो।।

गाथार्थः—ज्ञान जीव से अभिन्न है... दो नाम पड़े। ज्ञान और जीव, तो भी ज्ञान जीवस्वरूप अभिन्न है। दो नाम भले पड़े। एक का नाम ज्ञान और एक का नाम जीव। ऐसे दो नाम भेद पड़े। तो जीव ज्ञानस्वरूप ही है। आहाहा! यह तो जानने-देखने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता। आहाहा! हिलना, चलना, बोलना, यह तुम्हारे धन्धे का व्यापार... ऐई! हसमुखभाई! हमारे मनसुख है। पूरे दिन व्यापार में यह किया और यह किया और यह किया। कौन करे? प्रभु! जानन-देखन ऐसा आत्मा पर का करे तो वह आत्मा रहा नहीं। आहाहा! आत्मा का कर्तृत्व हो जाए तो आत्मा ज्ञानमूर्ति रहे ही नहीं। आहाहा! बहुत कठिन बात है।

ज्ञान जीव से अभिन्न है... ज्ञानस्वभाव जो है, वह स्वभाववान जो आत्मा, उससे एकमेक है, भिन्न नहीं। नाम भिन्न पड़ते हैं। **इसलिए वह आत्मा को जानता है; यदि ज्ञान आत्मा को न जाने...** आहाहा! क्या कहा? **ज्ञान जीव से अभिन्न है, इसलिए वह आत्मा को जानता है;...** न्याय दिया, समझ में आया? **ज्ञान जीव से अभिन्न है, इसलिए वह आत्मा को जानता है;...** आहाहा! ज्ञान आत्मा से अभिन्न है, इस कारण से ज्ञान आत्मा को जानता है। सूक्ष्म है। भाषा एकदम वैसी है। विषय सूक्ष्म है। आहाहा! **ज्ञान जीव से अभिन्न है, इसलिए वह आत्मा को जानता है;...** अभिन्न है, इसलिए ज्ञान आत्मा को जानता है। आहाहा! **यदि ज्ञान आत्मा को न जाने तो वह जीव से भिन्न सिद्ध होगा!** तो वह ज्ञानस्वभाव जीव से भिन्न सिद्ध होगा। तो वह आत्मा ही नहीं है। ज्ञान बिना आत्मा है ही नहीं। आहाहा! यह १७० हुई न?

गाथा-१७१

अप्पाणं विणु णाणं णाणं विणु अप्पगो ण संदेहो।
तम्हा स-पर-पयासं णाणं तह दंसणं होदि।।१७१।।

आत्मानं विद्धि ज्ञानं ज्ञानं विद्ध्यात्मको न सन्देहः।
तस्मात्स्व-पर-प्रकाशं ज्ञानं तथा दर्शनं भवति।।१७१।।

गुणगुणिनोः भेदाभावस्वरूपाख्यानमेतत्। सकलपरद्रव्यपराङ्मुखमात्मानं स्वस्वरूप-परिच्छित्तिसमर्थसहजज्ञानस्वरूपमिति हे शिष्य त्वं विद्धि जानीहि तथा विज्ञानमात्मेति जानीहि। तत्त्वं स्वपरप्रकाशं ज्ञानदर्शनद्वितयमित्यत्र सन्देहो नास्ति।

संदेह नहिं, है ज्ञान आत्मा, आत्मा है ज्ञान रे।
अतएव निज पर के प्रकाशक ज्ञान-दर्शन मान रे॥१७१॥

अन्वयार्थ : [आत्मानं ज्ञानं विद्धि] आत्मा को ज्ञान जान, और [ज्ञानम् आत्मकः विद्धि] ज्ञान आत्मा है, ऐसा जान;—[न संदेहः] इसमें सन्देह नहीं है। [तस्मात्] इसलिए [ज्ञानं] ज्ञान [तथा] तथा [दर्शनं] दर्शन [स्वपरप्रकाशं] स्व-परप्रकाशक [भवति] है।

टीका : यह, गुण-गुणी में भेद का अभाव होनेरूप स्वरूप का कथन है।

हे शिष्य! सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख आत्मा को तू निज स्वरूप को जानने में समर्थ सहजज्ञानस्वरूप जान, तथा ज्ञान आत्मा है, ऐसा जान। इसलिए तत्त्व (-स्वरूप) ऐसा है कि ज्ञान तथा दर्शन दोनों स्व-परप्रकाशक हैं। इसमें सन्देह नहीं है।

गाथा - १७१ पर प्रवचन

(गाथा) १७१।

अप्पाणं विणु णाणं णाणं विणु अप्पगो ण संदेहो।
तम्हा स-पर-पयासं णाणं तह दंसणं होदि।।१७१।।

संदेह नहिं, है ज्ञान आत्मा, आत्मा है ज्ञान रे।
अतएव निज पर के प्रकाशक ज्ञान-दर्शन मान रे॥१७१॥

दोनों ज्ञान-दर्शन में डाला। आहाहा! दर्शन डाला। जैसे ज्ञानस्वरूप जीव है, वैसे दर्शनस्वरूप भी जीव है। दर्शन और जीव भिन्नता नहीं है। दर्शन क्या? अपने को देखना। आहाहा! पर को देखता ही नहीं। परवस्तु को स्पर्श नहीं करता। ज्ञान आत्मा परवस्तु को स्पर्श नहीं करता, तो स्पर्श किये बिना, उसका ज्ञान होता है स्पर्श किये बिना, परन्तु वह व्यवहार है। आहाहा! अपना ज्ञान अपने को वेदन में आकर अनुभव में आता है। इसलिए ज्ञान और आत्मा अभिन्न है। आहाहा! कहा न? भाषा बहुत सादी। कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं के लिये बनाया हुआ है। यह पुस्तक स्वयं के लिये बनायी है। आहाहा! उसमें ऐसी बात डाली है, जो जगत को कठिन पड़ती है।

टीका : यह, गुण-गुणी में भेद का अभाव होनेरूप स्वरूप का कथन है। क्या कहते हैं? ज्ञान, गुण और आत्मा, गुणी, इसके भेद का अभाव। भेद का अभाव है। आहाहा! जीवद्रव्य है, वही ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप है, वही जीवद्रव्य है। जीवद्रव्य और ज्ञानस्वरूप यदि भिन्न होवे तो इस भेद का अभाव है। भेद का अभाव है। आहाहा! क्या कहते हैं? ज्ञान तो ठीक जानना... जानना... जानना... परन्तु आत्मा में तो सब अनन्त गुण है न? तो आत्मा दूसरी चीज़ को कर सकता है या नहीं? ज्ञान कुछ नहीं कर सकता। वह तो जाननेवाला है। आँख-नेत्र पर को देखता है, परन्तु परचीज़ में आँख प्रवेश नहीं करती। आहाहा! आँख पर को देखती है परन्तु पर में प्रवेश नहीं करती। इसी प्रकार यह चीज़ आँख में नहीं आती। जिसे देखता है, वह चीज़ इसमें नहीं आती। इसी प्रकार ज्ञान पर को जानता है, परन्तु परचीज़ ज्ञान में नहीं आती और ज्ञान पर में, ज्ञेय में नहीं जाता। वह ज्ञान और आत्मा अभिन्न है। आहाहा! ऐसी बातें!

यह, गुण-गुणी में भेद का अभाव होनेरूप स्वरूप का कथन है। हे शिष्य! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य महाराज जैसा है, वैसा कहते हैं। इसका अर्थ (यह कि) शिष्य को कहते हैं न? **तम्हा स-पर-पयासं णाणं तह दंसणं होदि।** कहते हैं, तब शिष्य को कहते हैं न? आहाहा! किसलिए इसमें से यह बात निकली?

हे शिष्य! सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख आत्मा को तू निज स्वरूप को जानने में समर्थ... आहाहा! **सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख...** आहाहा! तीर्थंकर और तीर्थंकर की वाणी और समवसरण तथा तीर्थंकर भगवान की प्रतिमा और मन्दिर, इन सर्व से भिन्न आत्मा है। आहाहा! **सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख...** है। भाषा ऐसी ली है, देखा! पराङ्मुख है। परद्रव्य से आत्मा पराङ्मुख है। सन्मुख नहीं, विमुख है। आहा! **हे शिष्य! सर्व परद्रव्य से...** सर्व द्रव्य में क्या बाकी रहा? तीर्थंकर, तीर्थंकर की वाणी, समवसरण, पंच परमेष्ठी सब परद्रव्य आये। आहाहा! प्रभु! जरा कठिन पड़े परन्तु परद्रव्य में पंच परमेष्ठी आये, वह परद्रव्य है। इस परद्रव्य पर तेरा लक्ष्य जाएगा तो तुझे राग होगा। आहाहा! उसकी भक्ति और उसका स्मरण (करने से) राग होगा। आहाहा! यह कहते हैं। **हे शिष्य! सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख...** सर्व द्रव्य से पराङ्मुख। कोई बाकी रहे? यहाँ कहे, सम्मेदशिखर की यात्रा करे तो अड़तालीस भव में मोक्ष जाए, इतने भव में मोक्ष जाए।

मुमुक्षु : ४९ भव में मोक्ष जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४९ भव में। कहते होंगे। आये थे न महावीरकीर्ति, उन्होंने कहा कि सम्मेदशिखर की यात्रा करो तो ४९ भव में मोक्ष होगा। कहा, यह वीतराग की वाणी नहीं है। वीतराग की वाणी स्वाश्रय के अतिरिक्त लाभ नहीं बताती। पराश्रय से तो बन्धन बताती है। दो सिद्धान्त सीधे। आहाहा! स्वाश्रय से लाभ, पराश्रय से अलाभ। चाहे तो त्रिलोकनाथ तीर्थंकर हों, वे भी अपने से पर हैं। पर का आश्रय करने से तो राग ही होगा। भले पुण्य हो, परन्तु वह पुण्य भी राग है। वह पुण्य भी अपवित्र है। अभी तो चारों ओर यह चलता है। पुण्य पवित्र है... पुण्य पवित्र है... पुण्य पवित्र है। पवित्र से काम होगा। आहाहा!

हे शिष्य! सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख... आहाहा! भगवान आत्मा अपने अतिरिक्त सर्व द्रव्य से पराङ्मुख है। आहाहा! गजब काम किया है न? यह तो परमात्मा वीतराग

की वाणी है। सन्त हैं, वे केवली के पथानुसारी हैं। दिगम्बर सन्त, वे तो केवली के मार्गानुसारी हैं। और ये कुन्दकुन्दाचार्य तो भगवान के पास गये थे। भगवान सीमन्धरस्वामी विराजते हैं। वहाँ आठ दिन रहे थे, भगवान के पास। वहाँ से आकर यह बनाया और उसमें भी कहते हैं कि यह तो मेरे लिये बनाया है। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय और अष्टपाहुड़ बनाये, परन्तु यह पुस्तक तो मेरे लिये बनायी है। मेरे आत्मा के घोलन के लिये बनायी है। आहाहा! मैं तो ज्ञानस्वरूप, सर्व परद्रव्यों से पराङ्मुख मैं हूँ। पैसे से तो पराङ्मुख, देव-गुरु-शास्त्र से पराङ्मुख है। आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ महिमावन्त अन्दर है। तुझे कोई पर की अपेक्षा नहीं है। पर की अपेक्षा करेगा तो राग हुए बिना रहेगा नहीं। राग हो, वह बन्धन बिना नहीं होता। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख आत्मा...** ओहोहो! प्रभु आत्मा, अपने आनन्द और ज्ञानादि सम्पन्न है। यह परद्रव्य से पराङ्मुख है। सन्मुख नहीं, पराङ्मुख है। आहाहा! **सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख...** इसमें पंच परमेष्ठी भी आये, तीर्थंकर आये, तीर्थंकर की वाणी आयी, समवसरण आया। उन सर्व परद्रव्यों से आत्मा पराङ्मुख है। आहाहा! गजब बात। धन्धे के कारण मन्दिर के दर्शन करने का समय नहीं मिलता। आहाहा! इसके बदले यहाँ कहते हैं कि मन्दिर के दर्शन हैं, वे शुभभाव हैं; धर्म नहीं।

गये थे न वहाँ? अफ्रीका। अभी अफ्रीका गये थे न? उन लोगों ने साठ लाख रुपये इकट्ठे किये हैं। हम वहाँ गये, छब्बीस दिन रहे। पैंतालीस लाख रुपये इकट्ठे हुए। पहले पन्द्रह लाख किये। पैंतालीस लाख बाद में किये। पच्चीस लाख का जिनमन्दिर बनाना है। भगवान के बाद परदेश में दिगम्बर मन्दिर पहला-पहला बनता है। अफ्रीका नैरोबी में लोग बहुत पैसेवाले हैं। पैसे खर्च करने के लिये तो पूछे नहीं कुछ। एक व्यक्ति ने भगवान की प्रतिमा पधराई तो साढ़े पाँच लाख। हजार-हजार की बातें वहाँ नहीं। हम छब्बीस दिन रहे। आहाहा! साढ़े पाँच लाख! और एक इन्द्र हुआ।

मुमुक्षु : यह सब आपके पुण्य प्रताप से हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जड़ की अवस्था उस काल में होनेवाली थी। बात ऐसी है प्रभु! एक इन्द्र बना, (उसके) साढ़े तीन लाख। सोलह इन्द्र बने न! सोलह या अधिक होंगे, खबर नहीं। पहला इन्द्र साढ़े तीन लाख। कहा, भाई! साढ़े तीन लाख क्या, दस

लाख दो परन्तु तुझे धर्म होगा, यह बात नहीं है। यहाँ तो स्पष्ट ढिंढ़ोरा है। गुप्त-गुप्त मक्खन-बक्खन है नहीं। वहाँ करोड़पति तो बहुत और पैसा खर्च करते हैं, तो लाभ होगा, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! पच्चीस लाख का मन्दिर बनना हो तो बनता है। शुभभाव होता है। और वह भी मन्दिर आत्मा बना ही कहाँ सकता है? आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप मकान (मन्दिर) बना सकता है? आहाहा! मकान तो मकान के कारण से बनता है। बनानेवाले का भाव होवे तो शुभभाव—पुण्य होता है। धर्म नहीं। संवर-निर्जरा नहीं। मिथ्यात्वसहित है, वह परम्परा मुक्ति का कारण नहीं। आहाहा! सम्यक् आत्मा का अनुभव हो, उसके व्यवहार को परम्परा कारण कहने में आता है। क्योंकि व्यवहार को तो छोड़कर निश्चय में आयेगा।

यहाँ तो देखो न! यहाँ तो सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख। ओहोहो! एक ओर आत्मा और एक ओर सर्व परद्रव्य। सर्व परद्रव्य। कोई बाकी नहीं। सम्मेदशिखर, गिरनार और यात्रा वह सब परद्रव्य है। सम्मेदशिखर की यात्रा भी शुभभाव है। धर्म-बर्म नहीं। लाख करे और लाख ऊपर चढ़े और नीचे उतरे। शुभभाव है। आहाहा! क्यों? कि **सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख आत्मा को तू निज स्वरूप को जानने में समर्थ...** आहाहा! क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा **सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख आत्मा को तू निज स्वरूप को जानने में समर्थ...** है। तुझमें समर्थ बल है। तू पर की अपेक्षा रखे तो जान सके, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! तुझमें बल इतना है कि तेरे से पूर्ण प्रगट करेगा। आहाहा! पहले सम्यग्दर्शन भी तुझसे होगा और चारित्र जो स्वरूप की रमणता है, सम्यग्दर्शनसहित, हों! चारित्र। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र नहीं होता। वह चारित्र भी स्व के आश्रय से होता है। पर के आश्रय से नहीं। केवलज्ञान स्व के आश्रय से होता है। मनुष्य भव और वज्रनाराचसंहनन के आश्रय से नहीं। आहाहा! ऐसी तुझमें शक्ति, ऐसा कहते हैं। इसका नाम आत्मा है। देखो! है?

परद्रव्य से पराङ्मुख आत्मा को तू निज स्वरूप को जानने में समर्थ... आहाहा! क्या कहा? आत्मा परद्रव्य से पराङ्मुख, विपरीत। परन्तु अपने स्वरूप को करने के लिये बलवान है। उसे कोई रोक सके, ऐसी चीज़ नहीं है। कर्म-बर्म आत्मा को देख सके, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। कर्म जड़ है। आत्मा भगवान चैतन्य है। कर्म को आत्मा स्पर्श नहीं करता, कर्म आत्मा को स्पर्श नहीं करते। आहाहा! अपनी पर्याय में विकार करता है, वह

अपना दोष है, उस कर्म से विकार नहीं होता। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि परद्रव्य से तू पराङ्मुख है, विपरीत है, परन्तु तेरा स्वरूप प्रगट करने में बलवन्त है। आहाहा! है?

निज स्वरूप को जानने में समर्थ... अपने स्वरूप को जानने में समर्थ है। आहाहा! परद्रव्य को जानने में तो पराङ्मुख कहा। सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख कहा और तेरा स्वरूप जानने में तू बलवान है, समर्थ है। तेरे बल की तुझे प्रतीति नहीं है। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' दिगम्बर मुनि, पंच महाव्रतधारी अनन्त बार हुआ। वह तो राग है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो। पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥' परन्तु आत्मा के ज्ञान बिना आनन्द नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम दुःखरूप हैं। आहाहा! गजब बात है। यह पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण, वह आस्रव दुःखरूप है। आहाहा! ऐसे नौवे ग्रैवेयक गया, मुनिव्रत धारण किया, पंच महाव्रत पालन किये, परन्तु आत्मा का आनन्द नहीं आया। आनन्द आये बिना तेरा मिथ्यात्व नहीं मिटा। आहाहा! समझ में आया? भगवान का साक्षात्कार नहीं हुआ, प्रभु! तूने राग की क्रिया की भेंट की। पंच महाव्रत पालन किये, यह अहिंसा, यह सत्य और यह ब्रह्मचर्य। बालब्रह्मचारीपने पालन किया परन्तु यह धर्म नहीं है, यह तो काया की क्रिया हुई। बालब्रह्मचारीपना पाले तो भी धर्म नहीं। यह शुभभाव है। आहाहा! अपने आत्मा में आनन्द में रमना, वह ब्रह्मचर्य है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा, चर अर्थात् रमना। अपने निज आनन्द में रमना, यह ब्रह्मचर्य है। काया से विषय सेवन नहीं किया, इसलिए यह ब्रह्मचारी है - ऐसा नहीं है। आहाहा! बात कठिन लगती है, भाई! लगे या न लगे, वस्तु यह है। जँचे या न जँचे। तीन काल में भगवान की वाणी है, यह देखो न! बनाया है स्वयं ने? यह आया न १७१?

'**अप्पाणं विणु णाणं णाणं विणु अप्पगो ण संदेहो।**' यह १७१ चलता है न? मूल पाठ। आत्मा के बिना ज्ञान नहीं और ज्ञान के बिना आत्मा नहीं। '**ण संदेहो। तम्हा स-पर-पयासं णाणं**' इसलिए ज्ञान स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, जैसे दर्शन स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। आहाहा! इसे किसी की मदद की अपेक्षा नहीं है। ओहोहो! यह संक्षिप्त भाषा में... **सर्व परद्रव्य से पराङ्मुख आत्मा को तू निज स्वरूप को जानने में समर्थ सहजज्ञानस्वरूप जान,...** आहाहा! यह कोई शास्त्र पढ़ने से ज्ञान नहीं होता। शास्त्र तो पुद्गल है, जड़ है। यह तो पहले ३४ गाथा में आ गया। जड़ से ज्ञान नहीं होता। ज्ञान से

ज्ञान होता है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा के ऊपर नजर करने से, उसमें एकाग्र होने से ज्ञान होता है। शास्त्र के ग्यारह अंग तो अनन्त बार पढ़ डाले। पढ़ डाले, पढ़कर छोड़ दिया। ग्यारह अंग, ग्यारह अंग किसे कहते हैं ? एक अंग में अठारह हजार पद, एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक। आहाहा! यह धारणा का विषय है।

यह कहते हैं कि आत्मा परद्रव्य से परान्मुख है परन्तु तेरे स्वद्रव्य को प्रगट करने में बलवान है। आहाहा! है ? **आत्मा को तू निज स्वरूप को जानने में समर्थ सहजज्ञानस्वरूप जान,...** वह तो सहज ज्ञानस्वरूप भगवान ही अन्दर है। ज्ञान की मूर्ति प्रभु है। आहाहा! ध्रुव ज्ञानस्वभाव में तो पर्याय का प्रवेश नहीं। वहाँ राग का प्रवेश तोकहाँ से होगा ? क्या कहा ? ध्रुवस्वरूप भगवान में ये केवलज्ञानादि पर्याय है, उसका भी ध्रुव में प्रवेश नहीं है। आहाहा! पर्याय ध्रुव के ऊपर तैरती है। आहाहा! गजब बात है। पर्याय द्रव्य के ऊपर तैरती है। अन्दर प्रवेश नहीं कर सकती। पर्याय की अवधि एक समय की है। ध्रुव अन्दर त्रिकाल एकरूप पड़ा है, प्रभु! आहाहा! परन्तु तेरी पर्याय में इतनी सामर्थ्य है कि पर से, सर्व से पराङ्मुख होकर अपने को जानने में समर्थ है। आहाहा! समझ में आया ?

सहजज्ञानस्वरूप जान,... वह तो स्वाभाविक ज्ञानस्वरूप आत्मा है। उसे जानने में आत्मा समर्थ है। **तथा ज्ञान आत्मा है...** यह ज्ञान जो प्रगट हुआ, वह आत्मा है। **ऐसा जान।** जो ज्ञान अन्दर में एकाग्र होकर प्रगट हुआ, वह आत्मा है। आत्मा, वह ज्ञान है और ज्ञान वह आत्मा है। आहाहा! अकेली आत्मा की बात की है। आहाहा! क्या हो ?

अनन्त काल से रुलता है, भाई! चौरासी के अवतार कर-करके... आहाहा! अनन्त अवतार किये, प्रभु! यह भूल गया। एक अवतार लेके यहाँ... आहाहा! ऐसे चींटी और मकोड़ा बीच में उस दबाव में आ जाए... आहाहा! उसकी जगह तो तूने ऐसे अनन्त चींटी-मकोड़ा, सिंह और बाघ सब तुझे खा गये। ऐसा अनन्त बार हुआ, प्रभु! तू भूल गया है। आहाहा! अनन्त-अनन्त काल से अनन्त भव छेदने का उपाय तो यह एक ही है। अनन्त भव नहीं करने का, छेदने का, भवरहित होने का, आत्मा का अन्तर समर्थ बल आत्मा आत्मा को जानना। आहाहा!

सहजज्ञानस्वरूप जान, तथा ज्ञान आत्मा है... आहाहा! किसलिए कहा न ? कि **आत्मा को तू निज स्वरूप को जानने में समर्थ...** जानने में, हों! यह सहज ज्ञानस्वरूप

ज्ञान और ज्ञान यह आत्मा। आहाहा! ज्ञान यह आत्मा, ऐसा जान। **इसलिए तत्त्व (-स्वरूप) ऐसा है कि ज्ञान तथा दर्शन...** अब दर्शन को मिलाया। **ज्ञान तथा दर्शन दोनों स्व-परप्रकाशक हैं। इसमें सन्देह नहीं है।** आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मुनि थे, भगवान के पास गये थे। वर्तमान में प्रभु विराजते हैं। आहाहा! आठ दिन वहाँ रहे थे। दो हजार वर्ष हुए। संवत् ४९। वहाँ से आकर यह बनाया। आहाहा! शब्द बहुत संक्षिप्त है।

तू परद्रव्य से पराङ्मुख, परन्तु तेरे स्वरूप को जानने में पूर्ण समर्थ है। ऐसा ज्ञान। यह ज्ञान तुझे पूर्ण जानने में समर्थ है। यह ज्ञान और आत्मा अभिन्न है। आहाहा! जानने का ज्ञान और आत्मा भिन्न है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। भाई गये? फतेपुर। है न? आये थे। आज आये थे। आहाहा!

अन्दर चैतन्य भगवान जाननस्वभाव से पूर्ण भरपूर, अनन्त-अनन्त गुण का भण्डार। कहते हैं कि यह द्रव्य पर से तो पर से पराङ्मुख है। किसका भार है? दिगम्बर सन्त कहते हैं। पर से पराङ्मुख, केवली से पराङ्मुख, पंच परमेष्ठी से पराङ्मुख। आहाहा! प्रभु! तुझे और परद्रव्य को क्या सम्बन्ध है? तुझमें तेरी अस्ति है और तुझमें परद्रव्य की नास्ति है। चाहे तो परमेश्वर हो, तो भी तुझमें उसकी नास्ति है। आहाहा! तुझमें ज्ञान के बल बिना दूसरा कोई बल करा सके और ज्ञान पूर्ण करावे, ऐसी ताकत नहीं है। आहाहा!

इसलिए तत्त्व (-स्वरूप) ऐसा है कि ज्ञान तथा दर्शन दोनों स्व-परप्रकाशक हैं। इसमें सन्देह नहीं है। एक प्रश्न है न? षट्खण्डागम में दर्शन व्यवहारनय से लिया है। दर्शन स्व को देखता है, ज्ञान पर को जानता है, ऐसा षट्खण्डागम (में) है न? धवल, जयधवल, महाधवल में ऐसा है। दर्शन स्व को देखता है, ज्ञान पर को देखता (/ जानता है)। यहाँ उसका नकार करते हैं। यह सब व्यवहार के कथन हैं। परमार्थ से तो ज्ञान अपने सामर्थ्य से अपने को पूर्ण जानता है, साथ में दर्शन भी पूर्ण देखता है। आहाहा! बात तो सादी परन्तु कठिन पड़ती है। क्या करना इसमें सूझ नहीं पड़ती। यह करना। अन्दर ज्ञानस्वरूप में ऊपर जाना। आहाहा! करने-फरने का कुछ नहीं है।

ज्ञान जानन अस्तिस्वभाव, उसे तेरा आत्मा जाननेवाला है, तो उस आत्मा में पूर्ण ज्ञान की पूर्ण अवस्था प्रगट हो, तब तो पूर्ण जाने बिना रहता नहीं। सबको पूर्ण जाने। और इस कारण से स्व-परप्रकाशक ज्ञान है, ऐसे दर्शन भी स्वप्रकाशक है। आहाहा! **इसमें सन्देह नहीं है।**

श्लोक-२८७

[अब, इस १७१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(अनुष्टुप्)

आत्मानं ज्ञानदृग्रूपं विद्धि दृग्ज्ञानमात्मकं।
स्वं परं चेति यत्तत्त्वमात्मा द्योतयति स्फुटम् ।।२८७।।

(वीरछन्द)

निज को दर्शन ज्ञानरूप, दृग ज्ञान भाव आत्मा जानो।
स्पष्ट प्रकाशित करे आत्मा निज-पर ऐसे तत्त्वों को॥२८७॥

[श्लोकार्थः—] आत्मा को ज्ञानदर्शनरूप जान और ज्ञानदर्शन को आत्मा जान; स्व और पर ऐसे तत्त्वों को (समस्त पदार्थों को) आत्मा स्पष्टरूप से प्रकाशित करता है।२८७।

श्लोक -२८७ पर प्रवचन

[अब, इस १७१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

आत्मानं ज्ञानदृग्रूपं विद्धि दृग्ज्ञानमात्मकं।
स्वं परं चेति यत्तत्त्वमात्मा द्योतयति स्फुटम् ।।२८७।।

आहाहा! एक आत्मा के लिये इतनी बात की है। बारह अंग और चौदह पूर्व में यह आत्मा कहा है। कलश-टीका में है कि बारह अंग हैं, वह भी विकल्प है। बारह अंग में भी अनुभूति करने का कहा है। आत्मा का अनुभव करने का कहा है। कलश-टीका में है। समझ में आया? बारह अंग का ज्ञान भी विकल्प है। आहाहा! बारह अंग में कहने में आया है कि आत्मा का अनुभव करना। पर्याय से आत्मा का अनुभव करना। आहाहा! राग

से नहीं, पुण्य से नहीं, निमित्त से नहीं। ध्रुव तो ध्रुव ही है। ध्रुव में तो कोई हलन-चलन है नहीं। पर्याय में परिणमन हलन-चलन है तो पर्याय में आत्मा जान ले। जाननेयोग्य है, वह पर्याय में तुझमें बल है। तू परद्रव्य से पराङ्मुख है परन्तु तेरी पर्याय से तेरा द्रव्य सन्मुख है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

प्रभु! तू परद्रव्य से पराङ्मुख है परन्तु तेरे स्वभाव से तू सन्मुख है। आहाहा! अरे! सत्य बात कान में पड़े नहीं। सत्य बात सुनने को मिले नहीं और यह करो... यह करो... पूरे दिन कर्ता हो, वह तो मिथ्यात्व है। पर का कर्ता, मन्दिर का कर्ता भी मैं हूँ - ऐसा माने तो मिथ्यात्व है। डाह्याभाई! आहाहा! राग का कर्ता माने तो मिथ्यात्व है। कठिन बात, प्रभु! राग विकार है, प्रभु चैतन्य त्रिकाली निर्विकार है। उस निर्विकार से राग कराना, आहाहा! यह बड़ा दोष है। कर्ताबुद्धि हुई, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! इसलिए यहाँ कहा।

श्लोकार्थः — आत्मा को ज्ञानदर्शनरूप जान... श्लोक है न यह।

आत्मानं ज्ञानदृग्रूपं विद्धि दृग्ज्ञानमात्मकं।
स्वं परं चेति यत्तत्त्वमात्मा द्योतयति स्फुटम् ।।२८७।।

आत्मा को ज्ञानदर्शनरूप जान... रागादि नहीं। **और ज्ञानदर्शन को आत्मा जान;...** आहाहा! आत्मा को ज्ञान-दर्शनरूप जान और ज्ञान-दर्शनरूप आत्मा जान। बाकी आत्मा किसी का कर दे और किसी का सुधार दे, किसी को मदद करे, सेवा करे, यह सब बात झूठी है। अज्ञानी ने भ्रम चलाया है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व का कुछ भी करे, यह अज्ञान चलाया है। भगवान के मार्ग से अत्यन्त विरुद्ध चलाया है।

यह यहाँ कहा। **आत्मा को ज्ञानदर्शनरूप जान और ज्ञानदर्शन को आत्मा जान;...** जान-कहा न? **आत्मा को ज्ञानदर्शनरूप जान और ज्ञानदर्शन को आत्मा जान; स्व और पर ऐसे तत्त्वों को (समस्त पदार्थों को) आत्मा स्पष्टरूप से प्रकाशित करता है।** स्व और पर को आत्मा ज्ञानस्वभाव से प्रत्यक्ष करे, ऐसी ताकत है। ऐसा पहले स्व ज्ञान वह आत्मा ऐसा अनुभव करके, फिर वहाँ एकाग्र होना, तो केवलज्ञान की पर्याय प्रगट होगी, ऐसी उसमें ताकत है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)